# मानव जीवन में तालों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

'तालों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव' विषय पर चिन्तन–मनन करने से पहले 'मनोविज्ञान' को जानना समीचीन प्रतीत होता है।

मानव–स्वभाव प्राचीन काल से ही कौतूहल का विषय रहा है और इसे समझने के लिए निरन्तर प्रयास किये जाते रहे हैं। इस दृष्टि से सोचने पर मनोविज्ञान, मानव–इतिहास जितना ही पुराना लगता है परन्तु एक विज्ञान के रूप में इसका विकास भौतिकी या रसायनशास्त्र जैसे प्राकृतिक विज्ञानों की तुलना में अपेक्षाकृत एक नवीन घटना है। बोरिंग लांगफील्ड एवं वेल्ड(1943) ने मनोविज्ञान की अत्यधिक उपयुक्त परिभाषा दी है। ''मनोविज्ञान अनुक्रिया में दिखाई पड़ने वाले व्यवहार तथा अनुभव में पाई जाने वाली चेतना से सम्बन्धित है।''

मनोविज्ञान के क्षेत्र में 'बोरिंग लांगफील्ड' व 'वेल्ड' की उपर्युक्त परिभाशा को महत्वपूर्ण माना जाता है। इससे मिलती–जुलती परिभाषा 'मन्न (1951) नामक मनोवेत्ता ने दी है। उनके अनुसार–''मनोविज्ञान व्यवहार का अन्वेषण करने वाला वह विज्ञान है, जिसमें व्यवहार के अन्तर्गत अनुभव भी सम्मिलित हैं।''
लैड्समैन ने भी (1977) इसे व्यवहार और अनुभव का विज्ञान माना है। मनोविज्ञान की उक्त परिभाषाओं के आलोक में कहा जा सकता है कि 'मानव के व्यवहार और अनुभव की जॉच–परख करने वाला विज्ञान मनोविज्ञान है।'1'

यहॉ मनोविज्ञान को जान लेने के उपरान्त यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि तालों के सन्दर्भ में मनुष्य का व्यवहार व अनुभव क्या कहता है ?

'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति विभिन्न विज्ञानों ने इस प्रकार दी है–'तालशब्दस्य निष्पतिः प्रतिष्ठार्थेनधातुना, गीत वाद्यं च नृत्य च शति ताले प्रतिष्ठितम्' अर्थात प्रतिष्ठावाचक धातुरूप 'तल' से 'ताल' शब्द की निष्पत्ति हुई है। गीत, वाद्य और नृत्य तीनों की प्रतिष्ठा ताल पर हुई है।2

'संगीत–रत्नाकर' मे जो वर्णन मिलता है, उसके अनुसार–'तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्धत्रि स्मृतः, गीतं वाद्यं तथा नृत्य यतस्ताले प्रतिष्ठितम' गीत, वाद्यं एंव नृत्य की प्रतिष्ठा 'ताल' पर हुई है एवं प्रतिष्ठावाचक धातु–रूप 'तल' से 'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति इसमें बताई गई है।3

'संगीतार्णव में–तांडवस्याद्यवर्णेन लकारो लास्य शब्दशाक् यदा संगच्छते लोके तदा ताल प्रकीर्तितः'ताण्डव नृत्य से 'ता' तथा लस्य नृत्य से 'ल' वर्णो के संयोग से 'ताल शब्द की व्युत्पत्ति दर्शाई गई है। 'संगीत–दर्पण' में 'ता कार से भांकर या शिव और 'ल' कार से पार्वती या शक्ति, दोनों के योग को 'ताल' कहा गया है।

नरहरि चक्रवर्ती ने 'भक्ति–रत्नाकर' में ताल के सन्दर्भ में एक श्लोक रत्नमाला' से उद्धृत किया है–'तकारः शरजन्मा स्यादाकारोविशणुरूच्यते, लकारो मारूतःप्रोत्स्ताले देवा वसन्ति ते।' अर्थात् 'तं' कार शरजन्मा यानी कार्त्तिकेय, 'आ' कार विष्णु एवं 'ल' 'कार मारूत–इन तीनों देवताओं द्वारा अधिष्ठित 'ताल' है।

'मृदंग–मंजरी में कहा गया है कि 'कालस्य एकद्वित्रयादिमात्रोच्चारण – नियमितस्य क्रियायाः परिस्पन्दनामिकायाः परिच्छेदहेतुस्तालः।

अर्थात एक, दो, तीन इत्यादि मात्राओं के उच्चारण द्वारा क्रियाओं के नियमित स्पन्दनों से काल(अखण्ड काल–गति) के परिच्छेदन–हेतु ताल है (छन्द या पदों में विभाजित करने के जो प्रयोग हुए, उन्हें ही 'ताल' कहा गया है)।

ताल का अर्थ भरत ने 'कला–काल' के प्रमाण के रूप में माना है–'कलाकाल प्रमाणेन ताल इत्यभिसंज्ञितः।4 इसी परिभाषा से मिलता जुलता भवार्थ अमरसिंह–प्रणीत 'अमरकोश' में मिलता है–'तालःकाल–क्रियामानम्'। अर्थात काल–क्रिया के नाप को ही 'ताल' कहते है।5

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में ताल के सन्दर्भ में कुछ तथ्य निरूपित किए जा सकते हैं। ''यह (ताल) अधारक है अर्थात गीत, वाद्य तथा नृत्य को आधार प्रदान करने वाला है। इसकी उत्पत्ति का सम्बन्ध देवों से है। यह काल की क्रियाओं को नापने का साधन है। ताण्डव एवं लास्य नृत्य के संयोग –स्वरूप ताल की उत्पत्ति हुई है। संगीत में 'ताल', 'लय' की स्थूल एवं साकार अभिव्यक्ति है।''

इस वर्णन से यह तो स्पष्ट है कि ताल की उत्पत्ति शुभ है व इसका प्रयाग भी सदा शुभ है, मंगलकारी है। यहॉ पर रामायण के अयोध्या–काण्ड के 71 वे सर्ग का 29वॉ श्लोक एक सटीक उदाहरण होगा–भेरी मृदंग वीणानां कोणसंघट्टितःपुनः। किमद्य

शब्दों विरतः सदा दीनगतिः पुरा।' इस उदारण में दशरथ–पुत्र भरत जब मातुलालय से अयोध्या लौट रहे थे, तब अयोध्या के एकदम नजदीक पहुँचने पर उनके मन में आंशका उठी–''कोण से प्रताडित भेरी , मृदंग और वीणा से जो पहले (अयोध्या में) निरन्तर ध्वनि होती रहती थी, वह आज बन्द क्यों हैं ?6

वस्तुतः अवनद्ध वाद्य अधिकांश रूप से तालगत है।7 यहाँ भेरी, मृदंग सदृश ताल–वाद्यों का वादन बन्द होने से भरत को अमंगल की आशंका होती है व हम सभी जानते है कि भरत की आशंका निर्मूल नहीं थी।

ताल की लयात्मकता व गति का अनुभव शैशव काल से ही होने लगता है। डॉ मार्टिन गार्डिटर का मानना है कि उम्र के छठे महीने से ही संगीत की लयों में बदलाव महसूस होने लगता है।8 संगीत मं लय–तत्व के उद्‌भव एवं स्वरूप पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि मनुष्य को लय का ज्ञान स्वर की अपेक्षा पूर्व में ही प्राप्त हो चुका था। आनन्दोत्सव मनाने एवं मनोरंजन के लिए मनुष्य ने सर्वप्रथम नृत्य करना प्रारम्भ किया। नाचते–नाचते क्रिया लयबद्ध होती चली गई।9

अंग को देह से छिन्न करने पर जिस प्रकार उसकी जैव क्रिया का अवसान हो जाता है, उसी प्रकार यदि संगीत–कला को सांस्कृतिक देह से भिन्न कर दिया जाये तो वह भी निष्क्रिय हो जाती है और संस्कृति की अंग–हानि होती है। भारतीय संस्कृति की बात करें तो तालों का सृजन, वादन हमारी संस्कृति के आनन्दोत्सव व विजयोत्सव मनाने की परम्परा से जुड़ा प्रतीत होता है।

जैसा कि प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है, वृत्रासुर राक्षस के वध के पश्चात् शिव जी ने आनन्दमग्न होकर ताण्डव नृत्य आरम्भ किया और उनके पुत्र गणेश ने पृथ्वी में गड्ढा खोदकर उस पर वृत्रासुर की खाल मढ़कर ताण्डव नृत्य के साथ संगति की।10 दुर्गा देवी को भी' तालनादप्रिया चैव मृदगंध्वनितत्परा' कहा गया है। महिषासुर से उनके युद्ध करते समय मृदंग की तालबद्ध ध्वनि हो रही थी।11

प्राचीन मानव का नृत्य भाव की अपेक्षा लय–प्रधान अधिक था। नृत्य के साथ ताल देने के लिए और काल–मापन के लिए ही इन चर्मानद्ध वाद्यों का सर्वप्रथम निर्माण हुआ होगा।12 विविध प्रमुख अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित दन्त–कथाओं के माध्यम से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि इन ताला–वाद्यों की उत्पत्ति विजयोत्सव एवं आनन्दोत्सव में लय के स्वतंत्र प्रकटीकरण व नृत्य के साथ अनुकरण–हेतु ताल–सृजन व प्रस्तुतीकरण–हेतु सशक्त व प्रभावी माध्यम के रूप से हुई है।

पाश्चात्य कवि जॉर्ज मेरेडिथ ने एक रमणी से कहा (ईश्वर का सबसे बड़ा आर्शीवाद है श्रेष्ठ स्त्री)। उस स्त्री ने फौरन जवाब दिया (उससे भी बढ कर दुर्लभ है सुन्दर संगीत)13 ऐसे दुर्लभ संगीत के प्राण–तत्वों में एक 'लय' की संवाहक ताल ही है। ताल के प्रकटीकरण हेतु वर्तमान में अवनद्ध वाद्य सर्वप्रमुख हो गए हैं। इन्हें मान एवं उपरंजन दोनों कार्य करने पड़ते है।14 तालों के प्रस्तुतिकरण सुनते समय अनायास ही हाथ, पैर व सिर हिलने लगते है अर्थात् ताल–गति का अनुसरण करने लगते हैं। बालक तो नाचने तक लगते हैं। इससे यह कहना उत्युक्तिपूर्ण न होगा कि आनन्द ही ताल के रूप में विद्यमान है।15

तालमय ध्वनि से तात्पर्य उन रंजक लयात्मक ध्वनियों से है, जिनमें निश्चित ध्वनि–क्रम के आवर्तन होते रहें। विश्वनियन्ता की व्यवस्थित प्रकृति का लघु रूप ही मानों ताल–ध्वनियों में प्रस्फुटित होता है। लय ध्वनियॉ निश्चय ही उन ध्वनियों से श्रेष्ठ हैं, जिनका सृजन लय–विहीन रूप में होता है।16

मानवीय काया एक सशक्त प्रयोगशाला है। शरीर की स्थूल ध्वनियों को व्यवस्थित एवं लयबद्ध कर अध्यात्म–साधनाऐं हमें अत्याधिक लाभ दे सकती है।17 अध्यात्म जगत् में आजकल एक निदान–प्रणाली तेजी से उभर रही हैं, जिसे' आध्यात्मिक शल्य–क्रिया' के नाम से जाना जाता है।18 इसके माध्यम से मन और भावनाओं की गहराई में लगे घावों को हटाकर, इनमें दबी–पड़ी असंख्य ग्रन्थियों को खोलकर मनुष्य को निर्ग्रथ किया जा सकता है। क्या उपर्युक्त प्रसंग में लय–युक्त ध्वनियॉ अर्थात ताल–ध्वनियों का प्रयोग कारगर हो सकता है ? यह शोध का विषय हो सकता है, क्योंकि ऐसा उल्लेख मिलता है कि प्रसिद्ध पखावजी कुदऊँसिंह ने पखावज बजाकर(ताल–ध्वनि से) पागल हाथी को अपने वश में कर लिया। सन्तुलन–विहीन मस्तिष्क पर लय–ध्वनियों के प्रभाव की यह एक महत्तवपूर्ण ऐतिहासिक घटना है।19

केनिया देश की 'लुओं' जनजातियॉ मानसिक बीमारी से पिंड छुडाने–हेतु जंगली वनौषधियों के सेवन के अतिरिक्त चिकित्सा पद्धति के रूप में नृत्य और नगाड़े की आवाज़ का उपयोग करती है। मानसिक रोगों, पीड़ाओं की निवृत्ति के लिए रोगी को नगाड़े की ताल के साथ तब तक नृत्य करना पड़ता है जब तक आत्म–विस्मृत न हो जाए।20

वैज्ञानिक उद्धरणों से यह प्रमाणित होता है कि लय–ध्वनियों का चर–अचर प्राणियों तथा जड़ वस्तुओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है, एवं इन्हीं लय–ध्वनियों का आधार ले भारतीय संगीत में तालों की सृष्टि हुई है।21

अतः ताल आज विजयोत्सव, आनन्दोत्सव में उद्‌भूत भावों के उद्दीपन, प्रकाशन, वर्धन में ही सहायक व प्रेरक नहीं है, अपितु विविध मनोभावों के जागरण व मनोरोगों के उपचार में भी सहायक सिद्ध हो सकती है। इसके लिए व्यापक शोध–कार्यो की आवश्यकता है।

तालों की लय, जाति, बोल, प्रयुक्त तालवाद्यों इत्यादि के कारण तालों के मानव–मन पर भिन्न–भिन्न प्रभाव पड़ते हैं वे इनसे विभिन्न प्रकार के भावों की सृष्टि व पोषण होता है। सर्वप्रथम लय की बात करते हैं–विलम्बित लय गम्भीरता की सूचक होती है। इसे हम दैनन्दिन जीवन के उदाहरण से भली–भॉति समझ सकते

हैं–जब हम निराश, हताश एवं अवसादग्रस्त होते है तो शारीरिक–मानसिक क्रियाशीलता कम हो जाती है व हमारे क्रियाकलापों में स्वाभाविक ढंग से विलम्बित लय का प्रवेश हो जाता है, अर्थात चपलता, स्फूर्ति के स्थान पर कार्यो में शिथिलता एवं गति में कमी परिलक्षित होती है। ऐसी स्थिति में विलम्बित लय में विशेषरूप से विषमपदी तालों, यथा–दीपचंदी, झप, रूपक आदि का वादन करूण अथवा शोक के भावों को व्यक्त करने में सहायक होगा।

मध्यलय सामान्य या साधारण अवस्था की सूचक होती हैं। इस लय में दादरा, कहरवा, त्रिताल आदि ताले शान्त भाव की अभिव्यक्ति में सहायक होती है।

दुत लय चंचलता,चपलता, क्रोध, भय आदि भावों को उद्दीप्त करने में सहायक है। उदाहरणार्थ–श्रंगार रस की रति–भावना के लिए हमारे अंग–प्रत्यंग में एक प्रकार की स्फूर्ति या चपलता का संचार हो जाता है। अतः तीनताल कहरवा, दादरा इत्यादि समपदी, सममात्रिक तालों का दुत लय में प्रयोग उपर्युक्त भावों के उद्दीपन में सहायक सिद्ध होगा।22

'विष्णु धर्मोत्तर उपपुराण' में रसों की दृष्टि से लय का विभाजन इस प्रकार है।–हास्य और श्रृंगार में मध्य लय, वीभत्स और भयानक में विलम्बित, वीर रौद्र और अद्भुत में दुत। इसमें शांत रस के लिए कोई विशिष्ट लय नहीं है, करूण रस भी छूट गया है। 'नाट्यशास्त्र' में रसों की दृष्टि से लय का बँटवारा इस प्रकार किया गया है–

'श्रृंगारहास्ययोर्मध्यलयः। करूणे विलम्बितः। वीररौद्राद्भुत बीभत्सभयानकेशु दुतः23

ताल के अंगों की रचना से लय में जो भिन्नता आती है, उसे 'ताल की जाति' कहते है। ताल की जातियों के अनुसार निर्मित ताल–गतियों भिन्न–भिन्न भावों की अभिव्यक्ति में सहायक होती है। ताल की जातियाँ पॉच होती हैं।–चतुरस्र, त्रयस्र, मिश्र, खंड एवं संकीर्ण। इनमें से संकीण जाति की ताले विशेष प्रचार से नहीं है। अतः इनका प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए ही होता है। त्रयस्र जाति की ताले मध्य लय में बजाए जाने पर भक्ति एंव श्रृंगार रस के भावों को व्यक्त करने में सहायक होती है। खण्ड जाति की ताले प्रायः दुत लय के लिए नहीं होती। मध्य–लय में ये ताले वीर रस की अभिव्यक्ति में सहायक होती हैं। विलंम्बित लय में ये करूण रस की अनुभूति कराती है। झप ताल,खण्ड जाति की प्रतिनिधि ताल कही जाती है। कहीं–कही इस ताल में श्रंगार रस के गीत भी सुने जाते है। ये मुगलकालीन श्रृंगारप्रियता के द्योतक हैं।

मिश्र जाति की तालों में हमें भक्ति तथा करूणा की भावनाएँ प्राप्त होती है। रूपक ताल में गीतों तथा गजलों का प्रयोग खूब होता है। किन्तु उनमें भी अधिकांशतः करूणा, निराशा के भाव ही प्रधान रूप से निहित रहते है। दीपचन्दी तथा झूमरा इसी श्रेणी की ताले हैं। दीपचंदी में बद्ध अनेक भाव–प्रधान गीत, लोक–संगीत एवं उपशास्त्रीय संगीत (ठुमरी) में भरे पड़े है।

भावोद्दीपन में ताल की लय व जाति के साथ–साथ उनके बोलों की भी विशेष भूमिका है। भावानुकूलता के अनुसार लघु वर्ण, दीर्घ वर्ण, एकाक्षरी, द्वयक्षरी, खले व बन्द बोलों के प्रयोग विभिन्न लयों व जातियों के साथ मिलकर किसी भाव को रस–परिपाक तक ले जाने में सहायक होते हैं। जैसे–क्रोध के भाव को उद्दीप्त करने में जोरदार खुली थाप अथवा 'धिरधिर' 'धुमकिट' जैसे भारी भरकम वर्णो का प्रयोग सहायक होगा। इसी प्रकार श्रृंगार रस की चंचलता व रति के भावोद्दीपन–हेतु चॉटी व मैदान पर निकलने वाले लघु वर्ण बन्द व मुलायम तरीके से बजाए तो उचित होगा।24

बनारस घराने में जनाना, मर्दाना गतें बजाई जाती है। इनमें न सिर्फ भावनुकूल बोलों का चयन किया जाता है, अपितु वादन–तकनीक को भी तदनुरूप बनाया जाता है, जिससे ज़नाना एंव मर्दाना गतों का श्रवण करते समय उनकी ध्वनि से ही स्पष्ट हो जाए कि यह ज़नाना गत है या मर्दाना।

वर्णों के निकास के साथ ही साथ अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका ताल–वाद्ययंत्रों की है, जिनमें अवनद्ध वाद्यों का स्थान प्रमुख है। ध्वनि की मधुरता मृदंग तथा मादल आदि में विशेष रूप से देखी जाती है, जो गम्भीर प्रकृति की होती है। मुधर किन्तु चंचल प्रकृति की ध्वनियॉ तबला, नाल, खोल आदि में मिलेंगी। हास्य तथा विनोद–भरी ध्वनियॉ हुडुक खंजरी, गोपीजंत्र आदि में सुनी जा सकती है। भय, रोश तथा आवेश उत्पन्न करने वाली ध्वनियॉ नगाड़ा, धौंसा, ढोल ढाक आदि से उत्पन्न की जा सकती हैं।

इसी प्रकार भिन्न–भिन्न भावों तथा परिस्थितियों के अनुरूप ध्वनियॉ उत्पन्न करने हेतु अनेक अवनद्ध वाद्य (ताल–वाद्य) भारत में उपलब्ध है।25

प्रस्तुत लेख में समग्र रूप में तालों के प्रभाव (मनोवैज्ञानिक) को देखने का प्रयत्न किया गया है जब हम 'ताल' की बात करते है तो ताल की लय जाति बोल प्रयुक्त ताल–वाद्य ,वादन–तकनीक स्वतः ही इसमें समाहित हो जाते है। अतः 'ताल' लय को आकार प्रदान करने व अभिव्यक्ति देने वाली, गत्यात्मक एवं रसात्मक है। संगीत के दोनों प्राण–तत्तव–'ध्वनि एंव लय' इसमें नैसर्गिक रूप से विचरते हैं। ताल की स्वतंत्र सत्ता है, जो स्वतंत्र प्रभाव डालने में सक्षम है। ताल के रसास्वादन से क्रियाशीलता बढ़ती है, ऊर्जा–स्तर बढ़ता है। मानव–मन पर इसका प्रभाव सकारात्मक है, आह्लादकारी है।26

1 सामान्य मनोविज्ञान – दुर्गानन्द सिन्हा, पृष्ठ 1 एवं 4
2 भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन– डॉ0 अरूण कुमार सेन
3 निबन्ध संगीत (संकलकः लक्ष्मीनारायण गर्ग), लेखश िर्शकः शास्त्रीय तालों और लोकसंगीत लयों का तुलनात्मक अध्ययन
4 भारतीय तलों का शास्त्रीय विवेचन – डॉ अरूणकुमार सेन
5 ताल–कोश –गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव, पृष्ठ 179

6 भारतीय संगीत का इतिहास– डॉ जयदेव सिंह, पृष्ठ 179
7 संगीत–वाद्यों की उत्पत्ति तथा विकास –कैलाश पंकज श्रीवास्तव, पृष्ठ 158'निबन्ध–संगीत'
8 ' अंखण्ड ज्योति', जुलाई 2005, पृष्ठ 25
9 तबला –कौमुदी, भाग3 स्वामी पागलदास, पृष्ठ 93
10 रवीन्द्र–संगीत–शान्ति घोश, पृष्ठ 24
11 तबलाशास्त्र–मधुकर गणेश गोडबोले, पृष्ठ 46
12 संगीत –वाद्यों की उत्पत्ति तथा विकास –'निबन्ध –संगीत ' , संकलकः लक्ष्मीनारायण गर्ग
13 संगीत–सागर– आमुखः (सम्पादक) प्रभूलाल गर्ग
14 डॉ0 सुभद्रा चौधरी, पृष्ठ 118
15 तबला–कौमुदी, भाग, पृष्ठ 19
16 भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन–डॉ0 अरूणकुमार सेन, पृष्ठ 185–186
17 'अखण्ड ज्योति', फरवरी 2006,पृष्ठ 6
18 'अंखण्ड ज्योति', 2005, लेख भीर्शकः 'रूग्ण मन की अध्यात्मिक भालयक्रिया'
19 भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन–डॉ0 अरूणकुमार सेन, पृष्ठ 186
20 'अखण्ड ज्योति', नवम्बर 2008, पृष्ठ 20
21 भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन– डॉ0 अरूणकुमार सेन
22 'लय व ताल का रसाभिव्यक्ति में योगदान' (संगीत)– डॉ0 (श्रीमती) शशि भारद्वाज
23 भारतीय संगीत का इतिहास – डॉ0 जयदेव सिंह, पृष्ठ 223
24 'लग व ताल की रसाभिव्यक्ति '– डॉ0 (श्रीमती) शशि भारद्वाज
25 भारतीय संगीत–वाद्य'–पं0 लालमणि मिश्र पृष्ठ 188
26 निष्कर्ष–लेखिका द्वारा

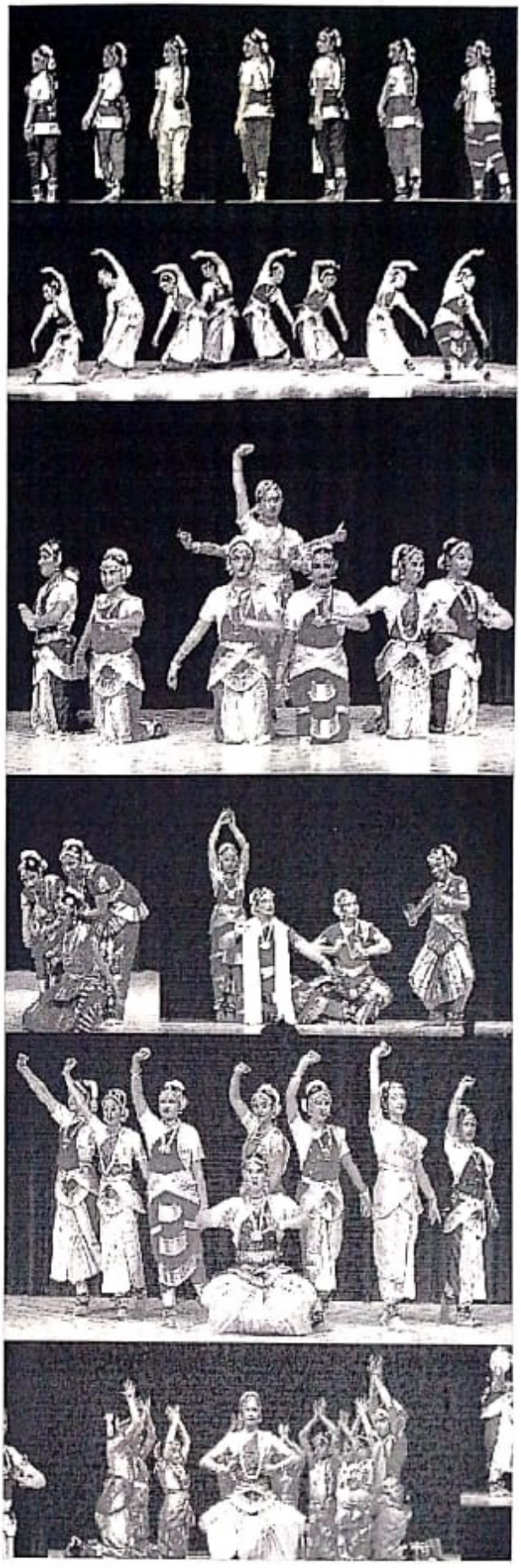

*डॉ0 गीता शर्मा*
(संगीत विभाग)
आई0 एन0 पी0 जी0 कॉलिज,
मेरठ।